दुनिया का आठवाँ महाद्वीप है- काइयाँपन : पचासवाँ न्यूज़लेटर (2024)

प्यारे दोस्तो,

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

हमारी दुनिया में एक आठवाँ महाद्वीप भी है- काइयाँपन। आप और मैं वहाँ कभी गए नहीं, हमने बस इसके बारे में अफ़वाहें सुनी हैं। इस महाद्वीप पर पैसों की नदियाँ बहती हैं जिनमें बड़े कॉर्पोरेट अधिकारी गोते लगाते हैं और अपनी ताक़त, विशेषाधिकार और संपत्ति में इज़ाफ़ा करने के लिए इसमें से जो चाहे निकाल लेते हैं। ये बड़े कॉर्पोरेट अधिकारी बाक़ी दुनिया की संपदा पर हाथ साफ़ करते हैं और सब कुछ इस काइयाँपन के महाद्वीप पर ले जाते हैं। बाकी दुनिया में धूल और सायों के अलावा कुछ नहीं रह जाता और लोग ज़िंदा रहने के लिए अपना श्रम बेचकर इस काइयाँपन के महाद्वीप के लिए और ज़्यादा सामाजिक पूँजी पैदा करने को मजबूर हो जाते हैं। सब देखते हैं कि कैसे पूँजी इस महाद्वीप पर भेजी जा रही है लेकिन चंद लोग ही इस बात को मानना चाहते हैं। ज़्यादातर लोग अपनी ग़रीबी के लिए खुद को ही ज़िम्मेदार मानते हैं न कि भ्रष्टाचार और लूट-खसोट के उस ढाँचे को, जो नवउदारवादी पूँजीवादी व्यवस्था का अभिन्न अंग है। सामाजिक संघर्षों से कटे रहकर इस भयानक सचाई को नज़रंदाज़ करके जीना अपेक्षाकृत आसान है।

भ्रष्टाचार दीमक है जो समाज को खोखला करता जाता है। जितना ज़्यादा भ्रष्टाचार होगा सामाजिक संस्थानों और भाईचारे का

पतन उतना ही ज़्यादा होगा। संभ्रांत वर्ग और उनके साथी जितना ज़्यादा नियमों को तोड़कर फ़ायदा उठाते हैं आम जनता में नियमों का पालन करने को लेकर उतनी ही उदासीनता बढ़ती जाती है। रिश्वत और भाई-भतीजावाद आधुनिक भ्रष्टाचार के अहम अंग हैं। लालच और अभिमान जैसे घातक दोष सराहे जाते हैं, जबकि ईमानदारी और शालीनता जैसे सद्भावों को 'भोलापन' मानकर उनका मखौल उड़ाया जाता है। महात्मा गाँधी ने सौ साल पहले कहा था कि 'एक देश की सुव्यवस्था का अंदाज़ा इससे नहीं होता कि उसमें कितने लखपति हैं बल्कि इससे होता है कि वहाँ की कितनी जनता भुखमरी से मुक्त है'। इस लिहाज से सुव्यवस्था के मामले में आज की दुनिया में बस उथल-पुथल है। यह दुनिया इसके चंद अमीरों के दुनिया का पहला खरबपति बनने की होड़ से चल रही है जबकि भुखमरी के आँकड़े आसमान छू रहे हैं। अमीरों को अमीर बने रहने दिया जा रहा है बल्कि वे सब हथकंडे अपनाकर और अमीर होते जा रहे हैं तथा अपनी इस इच्छा को पूरा करने के लिए उन्होंने भ्रष्टाचार को संस्थागत बना दिया है।

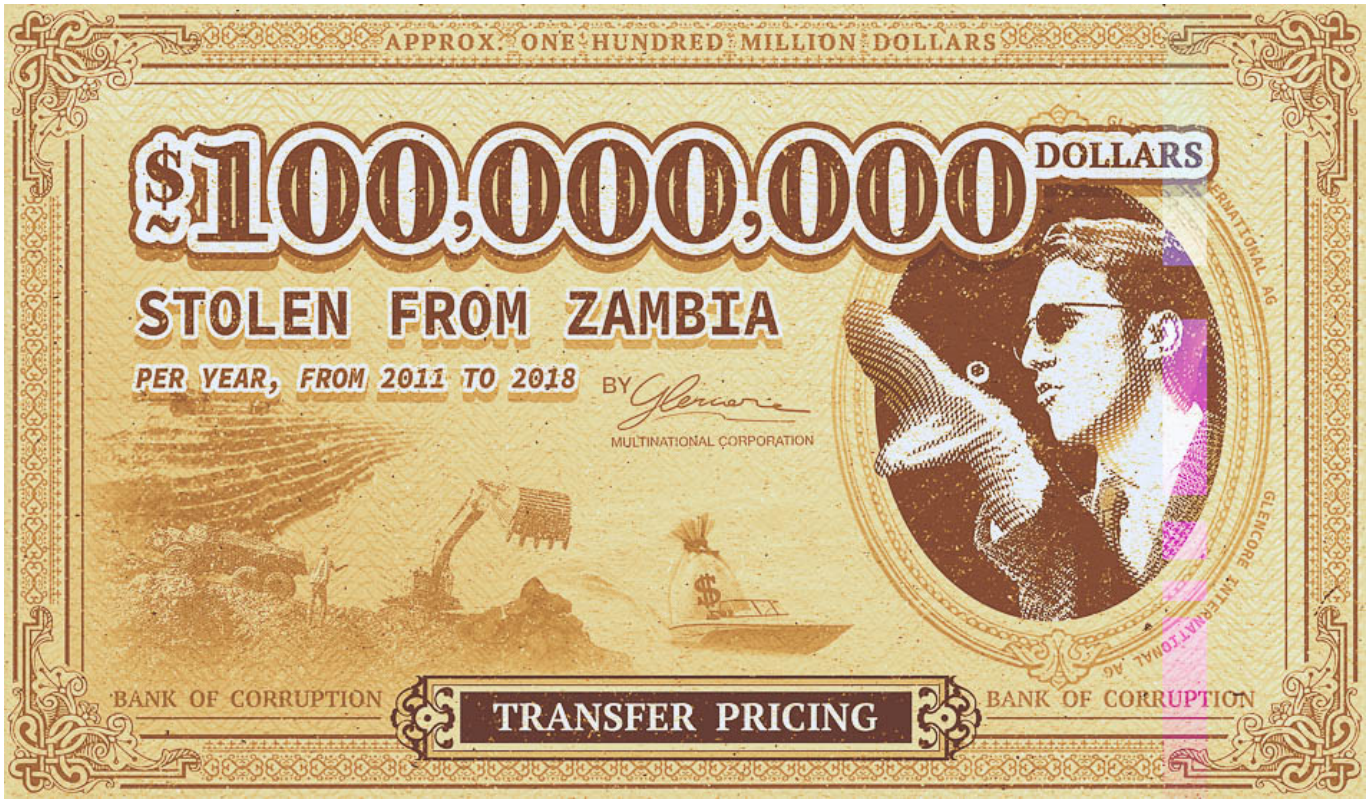

हमारे डोसियर संख्या 82 **How Neoliberalism Has Wielded 'Corruption' to Privatise Life in Africa** [नवउदारवाद ने कैसे अफ्रीका में जीवन के निजीकरण के लिए 'भ्रष्टाचार' का सहारा लिया] में भ्रष्टाचार की समस्या पर विचार किया गया है, जो न सिर्फ़ सार्वजनिक संस्थानों की प्रतिष्ठा के लिए खतरा है, बल्कि समाज के लिए भी। इसमें यह रेखांकित किया गया है कि 80 से 90 के दशक में आए नवउदारवादी दौर ने किस तरह भ्रष्टाचार की अवधारणा को संकुचित करके सिर्फ़ सार्वजनिक(सरकारी) क्षेत्र के भ्रष्टाचार तक सीमित कर दिया। जर्मनी में 1993 में स्थापित ट्रैन्स्पेरन्सी इंटरनेशनल (TI) ने इस धारणा को आगे बढ़ाया। भ्रष्टाचार के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र के कन्वेंशन (2003) का आधार यही धारणा बनी। तब से ग्लोबल नॉर्थ की सरकारों ने TI के आंकड़े का इस्तेमाल बहुआयामी संस्थाओं जैसे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) पर दबाव डालने में किया, जिससे विकासशील देशों में उनका काम 'भ्रष्टाचार' के इसी विचार पर केंद्रित रहा। अगर किसी देश में भ्रष्टाचार की दर ऊँची पाई जाएगी तो उसके लिए ऋण लेना महँगा होगा और तब ये संस्थाएँ उस देश की नीतियों और कामकाज पर ज़्यादा असर डाल सकेंगी। इन संस्थाओं ने विकासशील देशों से कहा कि अगर वे अपने देश में भ्रष्टाचार की दर कम रखना चाहते हैं तो इन्हें अपने सार्वजनिक या सरकारी संस्थानों में सुधार करने होंगे, जैसे कि नौकरशाहों की संख्या कम करनी होगी, यहाँ तक कि राज्य की नियामक प्राधिकरणों में भी, इसके साथ सरकारी कर्मचारियों की संख्या में कमी लानी होगी। 90 के दशक में आईएमएफ ने विकासशील देशों को लोन या आर्थिक मदद देने की शर्तों में से एक यह शर्त रखना शुरू कर दिया कि वह देश सरकारी क्षेत्र के कर्मचारियों की आय पर होने वाले ख़र्च को कम करें। चूँकि इन देशों को अपने बाहरी क़र्ज़ चुकाने के लिए आर्थिक मदद की बेहद ज़रूरत थी इसलिए कई देशों ने यह शर्त मान ली और सरकारी क्षेत्र में कटौती करना शुरू कर दिया। आज यूरोपीय वर्कफोर्स का औसतन 21%

सरकारी क्षेत्र में काम करता है जबकि माली में यह आँकड़ा 2.38% है, नाइजीरिया में 3.6% और ज़ाम्बिया में 6.7%। इस वजह से ये देश अफ़्रीकी महाद्वीप में बड़े बहुराष्ट्रीय कॉर्पोरेशनों को नियंत्रित नहीं कर सकते। इतने स्पष्ट अंतर की ही वजह से हमने इस डोसियर को अफ़्रीकी महाद्वीप पर केंद्रित रखा है।

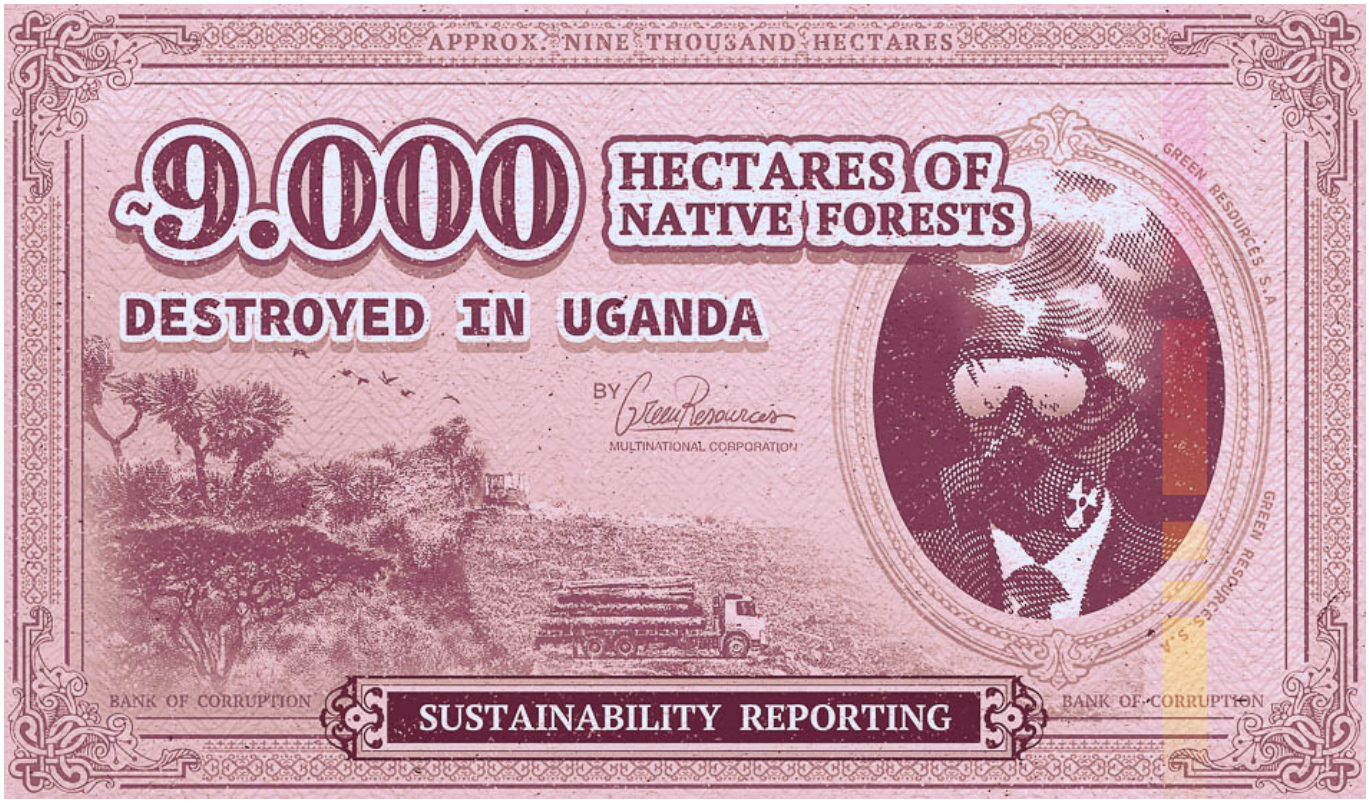

आज अफ़्रीकी वैचारिकी में अफ़्रीकी यथार्थ कम ही देखने को मिलता है। 'संरचनात्मक समायोजन' (स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट), 'बाज़ार का उदारीकरण', 'भ्रष्टाचार' और 'सुशासन' जैसी नवउदारवादी अवधारणाएँ इस महाद्वीप पर थोपी गई हैं और यहाँ के बुद्धिजीवी इतिहास के विरुद्ध जाकर उपनिवेशवाद की विरासत का गंभीरता से ज़िक्र करने से भी बच रहे हैं। साथ ही उन संघर्षों को भी छिपाने की कोशिश कर रहे हैं, जिन्होंने एक संप्रभु राष्ट्र स्थापित करना चाहा और जनता की गरिमा को वापस हासिल करना चाहा। वे इस इतिहास तथा संघर्षों से निकली विकास की अवधारणाओं को भी गायब करना चाहते हैं। एक पुरानी नस्लवादी धारणा है कि अफ़्रीकी देश भ्रष्ट हैं और यह भी कि जब राज्य के संस्थान नहीं होंगे तभी किसी तरह प्रगति और विकास किया जा सकता है। लेकिन जब नियामक संस्थान बर्बाद किए जाते हैं तो सबसे ज़्यादा फ़ायदा बहुराष्ट्रीय कंपनियों को होता है।

अफ़्रीकी महाद्वीप संपदाओं के मामले में बहुत **संपन्न** है, यहाँ दुनिया का लगभग 30% खनिज भंडार पाया जाता है (जिसमें दुनिया का 40% सोना, 90% प्रतिशत तक क्रोमियम और प्लैटिनम और सबसे ज़्यादा कोबाल्ट, हीरे, प्लैटिनम और यूरेनियम के भंडार शामिल हैं), दुनिया की 8% प्राकृतिक गैस और 12% तेल के भंडार अफ़्रीका में हैं। अफ़्रीका में दुनिया की 65% भूमि कृषि योग्य है और धरती के 10% मीठे पानी के अक्षय स्रोत भी। लेकिन काफ़ी हद तक औपनिवेशिक काल की नीतियों और फिर नवउपनिवेशवादी दौर में इनके जारी रहने के कारण अफ़्रीकी देश अपने विकास के लिए इन संपदाओं का इस्तेमाल नहीं कर पाए हैं। इन राष्ट्र-राज्यों में शासन कर रहे अभिजात वर्ग ने अपने देशों की संप्रभुता को ताकतवर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले कर दिया है जिनका मुनाफ़ा इन देशों के सकल घरेलू उत्पाद से कहीं ज़्यादा है। ये कंपनियां अपने मुनाफ़े के सिर्फ़ कुछ हिस्से का ही खुलासा करती हैं, इसका दो-तिहाई 'गलत कीमत' पर आधारित होता है और इसमें से भी ज़्यादातर कर छिपाने वाले देशों में भेज दिया जाता है। उदाहरण के लिए, 2021 की एक **रिपोर्ट** में सामने आया कि 1970 से2018 के बीच अफ़्रीकी देशों से दो खरब यूएस डॉलर (2018 में यूएस डॉलर की क़ीमत के हिसाब से) पूँजी बाहर गई, जबकि अफ़्रीकन डेवलपमेंट बैंक ने **दर्ज** किया कि 1980 से 2009 के बीच तक़रीबन 1.22 से 1.35 खरब यूएस डॉलर अफ़्रीका से गैरकानूनी ढंग से बाहर गए। आज यह **अनुमान** है कि हर साल 88.6 अरब यूएस डॉलर अफ़्रीका

से गैरकानूनी तौर से बाहर भेजे जाते हैं।

इन अफ्रीकी देशों के सत्ताधारी अभिजात वर्ग इन कंपनियों के कहे पर चलते हैं, ज्यादातर इसलिए कि इन्हें कॉर्पोरेट के इस भ्रष्टाचार को नज़रंदाज़ करने के लिए रिश्वत मिलती है। 2016 में अफ्रीका में संयुक्त राष्ट्र आर्थिक कमीशन ने **रिपोर्ट** किया कि अफ्रीकी अधिकारियों को 99.5% रिश्वत गैर-अफ्रीकी कंपनियों से मिलती है और यह भी शंका जताई कि बड़ी-बड़ी खनन कंपनियाँ रिश्वत के बाज़ार में धँसी पड़ी हैं। बेशक कॉर्पोरेट जो रिश्वत देते हैं उसका फल उन्हें मिलता है : पश्चिमी देशों की खनन कंपनियों को काफ़ी ज़्यादा मुनाफ़ा होता है, इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों का खरबों का कर बच जाता है। दूसरे शब्दों में अफ्रीका का सत्ताधारी वर्ग बहुत कम दाम में अपने देशों को बेच रहा है। इस सबके बीच उन बच्चों के लिए कुछ नहीं बचता जो तांबे और सोने के इस भंडार पर बैठे हैं। ये बच्चे वे समझौते नहीं पढ़ सकते जो इनकी सरकारों और खनन कंपनियों में होते हैं। और न ही इनमें से कई बच्चों के माँ-बाप ही ऐसा कर सकते हैं। .

काइयाँपन के इस महाद्वीप पर बाक़ी दुनिया में फैले भ्रष्टाचार की कोई फ़िक्र नहीं करता। अकाउन्टन्सी कंपनियों के कारनामों से सैंकड़ों खरबों डॉलर की चोरी हो रही है उसकी किसी को परवाह नहीं और न ही इस बात की कि इस चोरी को बहुआयामी संस्थाओं ने एक आम घटना बना दिया है जबकि ये ग्लोबल साउथ के सार्वजनिक क्षेत्र में छोटी से छोटी गड़बड़ी को सूँघ निकालती हैं। उपनिवेशवाद या नवउपनिवेशवाद के बारे में कोई सोचता नहीं, इन शब्दों का काइयाँपन के महाद्वीप पर कोई अर्थ नहीं।

दक्षिण अफ्रीकी कवि ऑसवाल्ड बायसेनी साली की बेहतरीन किताब साउंड्स ऑफ ए काइहाइड ट्रम [गाय की खाल से बने ड्रम का स्वर] में ऑलवेज ए सस्पेक्ट [हमेशा एक संदिग्ध] शीर्षक कविता है। इस कविता में नस्लभेद का सबसे आम देखे जाने वाला पहलू है – यह मान लिया जाना कि एक अश्वेत व्यक्ति एक चोर है। कभी भी औपनिवेशिक लुटेरों पर चोरी का इल्ज़ाम नहीं लगता। यह तो बस उपनिवेश बना लिए गए देशों के लोगों पर लगता है जो दरअसल पीड़ित हैं, उनसे उनकी ज़मीनें और पूँजी चुरा ली गई है। साली की कविता में दिखाया गया है कि अफ्रीकी भ्रष्ट हैं यह नस्लभेदी पूर्वाग्रह रोज़मर्रा की ज़िंदगी में भी फैल गया :

> मैं सुबह उठता हूँ
> और पहनता हूँ सभ्य कपड़े –
> एक सफ़ेद कमीज़, एक टाई और सूट।
>
> मैं सड़क पर निकलता हूँ
> मुझे मिलता है एक शख़्स
> जो कहता है मुझसे 'काम करो'।
>
> मैं दिखाता हूँ उसे
> अपने होने के काग़ज़ात
> वो जाँचे जाते हैं और मान लिया जाता है मेरा होना।
>
> फिर मैं घुसता हूँ एक इमारत के अहाते में
> यहाँ कमिश्नर रोकता है मेरा रास्ता
> 'क्या चाहिए तुम्हें ?'
>
> मैं छानता हूँ खाक़ सड़कों की
> मेरी बग़ल में चल रही है एक 'सभ्य महिला'
> अपना पर्स खींच लेती
> दूसरी ओर
> और देखती है मुझे ऐसी नज़र से मानो कह रही हो
> 'हा ! हा ! मैं जानती हूँ तुम कौन हो ;
> इन सलीकेदार कपड़ों के पीछे
> दिल है एक चोर का'।

सस्नेह,

विजय